

## आधुनिक हिंदी उपन्यासों में नारी का बदलता स्वरूप

डॉ. संतोष कौल काक

एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, बी. एम. रुइया गर्ल्स कॉलेज, मुम्बई, महाराष्ट्र, भारत।

### प्रस्तावना

परिवर्तन प्रकृति का नियम है और किसी भी शिष्ट तथा प्रगतिशील समाज के लिए वह आवश्यक भी है। समाज का ही प्रतिरूप है साहित्य भी। अतः वैदिक काल से लेकर आज तक समाज में जो भी परिवर्तन आये उनका चिंतन साहित्य में दृष्टिगोचर होता है। समाज का एक महत्वपूर्ण घटक है नारी। समाज में समय – समय पर हुए विभिन्न परिवर्तनों के परिणामस्वरूप नारी की स्थिति भी प्रभावित हुई। नारी जीवन में आते हुए इन बदलावों के चित्र भी साहित्य में अंकित होते चले गए।

वैदिक काल में वह एक रत्न थी, गृह – संचालन से लेकर हवन – यज्ञादि तक एवं सैनिक वेश में पति की सहायिका थी नारी। उसे अनेक अधिकार प्राप्त थे। धीरे – धीरे उसके अधिकार कमतर होते चले गए। वह 'शैडो' बनने को विवश होती चली गयी। उपनिषदों तक यह कहा गया कि "स्त्री – पुरुष दोनों ही एक वृक्ष पर बैठनेवाले दो पक्षी हैं और दोनों के मेल, सहकारिता और सौहार्द्र से ही विश्व की स्थिति है।"<sup>1</sup> परन्तु रामायण काल तक आते – आते वह पति की अनुगामिनी एवं उसके वंश की मर्यादा की रक्षा हेतु 'स्व' का समर्पण करने की भूमिका में पहुँच गयी। "महाभारत-काल में एक तरफ उन्हें सम्मान मिला तो दूसरी ओर उन्हें अमर्यादित, असंगत, जलती हुई आग, माया, उस्तरे की धार, विष और साँप कहा गया।"<sup>2</sup> बौद्ध-साहित्य में उसे धार्मिक कार्य का अधिकार मिला पर उनका अस्तित्व नगण्य या नकारात्मक ही दीखा। रीतिकाल तक आते – आते वह मात्र रमणी हो गयी। हर तरह से पराधीन हो वह मानसिक रूप से भी पराधीन हो गयी। अशिक्षा, आर्थिक पराधीनता, पितृसत्तात्मक व्यवस्था, आदि ने उसकी स्थिति को और भी हीन बना दिया। अठारहवीं शती में शिक्षा के प्रसार से स्त्रियों के पिछड़ेपन की ओर लोगों का ध्यान गया। समाजसुधारकों के अथक प्रयासों, गांधीजी की नारी-उत्थान विषयक विचारधारा, मार्क्सवादी दर्शन, फ्रायड दर्शन के प्रभाव ने उसे कल्पना से यथार्थ लोक की ओर लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। नारी को स्वतंत्रता, समानाधिकार दिलाये जाने के प्रयासों की अनुभूति साहित्य में सुनाई पड़ने लगी। उसकी अस्मिता को लेकर जागरूकता आई। रुढियों के किले धीरे – धीरे ध्वस्त किये जाने लगे। उनके चहुँमुखी विकास की गूँज सुनाई देने लगी। धर्म, विवाह, चरित्र, प्रेम, यौन-संबंधों आदि के प्रति दृष्टिकोण बदलने लगे। कविता में प्रसाद, मैथिलीशरण गुप्त, पन्त, निराला, महादेवी वर्मा, दिनकर बच्चन आदि ने, नाट्य – साहित्य में प्रसाद, उदयशंकर भट्ट, उपेन्द्रनाथ अशक, विष्णु प्रभाकर, भगवतीचरण वर्मा, सुरेन्द्र वर्मा, मोहन राकेश आदि ने, कथा – साहित्य में प्रसाद, प्रेमचंद, जैनेन्द्र, इलाचंद्र जोशी, भगवतीचरण वर्मा, विष्णु प्रभाकर, अमृतलाल नागर, यशपाल, रांघेय राघव, अज्ञेय, धर्मवीर भारती, फनीश्वरनाथ रेणु, कमलेश्वर, शिवप्रसाद सिंह, राजेन्द्र यादव, महिला कथाकारों में मन्नू भंडारी, शिवानी, कृष्णा सोबती, मालती जोशी, अमृता प्रीतम, निरुपमा सेवती, मृदुला गर्ग, मेहरुनिसा परवेज़, नासिरा शर्मा आदि अनगिन कथा-शिल्पियों ने उस परिवर्तन को, उसके जीवन से जुड़े सरोकारों को समाज के सामने उभारा। इतना ही नहीं अपितु 'कस्तूरी कुंडल बसै', 'अन्या से अनन्या तक', 'हादसे', 'दोहरा अभिशाप', 'एक कहानी यह

भी' जैसी आत्मकथाएँ स्त्री – लेखिकाओं द्वारा लिखी गयीं। इस तरह काव्य-सृजन के उत्स के रूप में चित्रित की जानेवाली नारी के अंतर्मन की गहराइयों की विवेचना व व्याख्या का विश्लेषणात्मक चित्रण संवेदनशीलता से किया जाने लगा। विशेषतः हिंदी उपन्यासों में नारी के इस बदले जगत की, उसकी पीड़ाओं, यंत्रणाओं, और उसकी मानसिकता का चित्रण विविध प्रकार से विश्लेषित हुआ। नैतिकता - अनैतिकता के बदलते मानदंडों को लेकर स्वीकृति – अस्वीकृति की दुविधा से जूझती नारी की मानसिकता के चित्र उकेरे गए।

अपनी अनेक ज़रूरतों के लिए पुरुष स्त्री पर निर्भर करता है अतः वह उसे समाप्त नहीं करना चाहता, अपितु उसके लिए एक महीन जाल बुनकर, उसे अपने से कमतर दर्जा देकर उसे बंदी बनाए रखना चाहता है। स्त्री ने उसकी बनार्यों दीवारों को स्वीकार कर लिया, खुदको समर्पित भी कर दिया, पर फिर उसने महसूस किया कि सहधर्मिणी कहलाने के बाद भी उसे सहयोगी की भूमिका या दर्जा नहीं दिया गया। उसका साथी निरंतर विकास करता रहा और वह उसके विकास में स्वयं को तिरोहित करती चली गयी। पुरुष से सम्बन्ध जुड़ते ही उसके वर्ण, धर्म, जाति को आत्मसात करते ही, उसके परिवार, समस्त रीति – रिवाज कर्मकांड परम्पराओं को, उसके परिवार के विभिन्न संबंधों, उन संबंधों से उपजी समस्त भूमिकाओं को निभाने की बाध्यताएँ भी स्त्री के सर नत्थी हो गयीं। पुरुषप्रधान समाज ने उसके आस-पास संबंधों का इतना जटिल ताना-बाना बुना कि उससे मुक्त होने के लिए, वस्तु से व्यक्ति बनने के लिए, स्वयं को पहचानने के लिए, अपनी अस्मिता को हासिल करने के लिए उसे अथक मेहनत करनी पड़ी। अपने परिवेश, दिनचर्या, स्वायत्तता को सही रूप में जानने – समझने के बाद स्त्री ने महसूस किया कि उसका जीवन वही नहीं है जो दूसरों ने उसके लिए निर्धारित किया है, वरन वह भी हो सकता है जो वह स्वयं अपने लिए जीना चाहती है, अपने लिए गढ़ सकती है। अपने अतीत का पुनरावलोकन कर, अपनी सत्ता को पुनः परिभाषित व पुनर्स्थापित करने की चाह उसमें जागी, अपने विकास में बाधक समस्त प्रत्ययों का प्रतिकार करने की हिम्मत उसने जुटाई। और यहीं से स्त्री-विमर्श का वास्तविक स्वरूप उभरा।

स्त्री - केंद्रित लेखन केवल करुणा-विगलित या श्रद्धा से महिमा - मंडित करनेवाला लेखन नहीं रह गया, अपितु पुरुष वर्चस्ववाद के विरुद्ध आवाज़ उठानेवाला एवं समानता के स्तर पर स्थापित होने की चेतना एवं अधिकार से, सजगता से भरा लेखन बन गया। स्त्री केवल संविधान के पन्नों में कानून बन जाने से संतुष्ट नहीं रही, अपितु उसे अमल में लाकर स्वयं की स्थिति को पुनर्परिभाषित करने के लिए संघर्ष करने को उद्यत हुई। इसके लिए आवश्यक था देह और दिमाग पर सदियों से कसी सुनहली साँकलों को काटने का श्रम व साहस दिखाकर अपना मार्ग स्वयं खोजने की कोशिश करना। उसकी इस मानसिकता से जुड़ी अनुभूतियाँ, जीवन के मर्मस्पर्शी चित्र, नग्न-क्रूर यथार्थ, बदलते जीवन मूल्य, नए आयाम, मुक्ति-कामना के नए क्षितिज, नयी भाषा, अनेक रूपकों में ढलकर लिपिबद्ध होने लगे।

प्रेमचंद ने अपने उपन्यास की नायिकाओं ( मालती, गोविंदी, जालपा, सोफिया आदि ) को प्रगतिशीलता के पथ पर अग्रसर होने की सहमति तो दी, उनको महिमा - मंडित भी किया पर उन्हें आदर्श से परे जाने की अनुमति नहीं दी। पर पुरुष के प्रति उपेक्षिता के मन में प्रेम उपजा भी तो उसे आदर्शवाद का जामा पहना उन्होंने उसका परिष्कार भी किया। जैनेन्द्र की नायिका पर पुरुष से प्रेम करती है पर देह-दान नहीं करती। पतिपरायणा का आदर्श नहीं छोड़ पाती। इलाचंद्र जोशी ने नारी की कुंठाओं, मनोभावों को मनोवैज्ञानिक धरातल पर उकेरा। अज्ञेय ने 'शेखर एक जीवनी' की 'शशि' को, 'नदी के द्वीप' की 'रेखा' को, धर्मवीर भारती ने 'गुनाहों का देवता' की 'सुधा' को आत्मपीडन सहते दिखाया। इन्होंने नारी की मानसिकता, उसके छोटे-बड़े सुख-दुःख को परत-दर-परत उघाड़कर, उसके व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं, कुंठाओं – पीडाओं को उद्घाटित किया। बीसवीं सदी की शुरुआत में शरतचंद्र ने जब कहा कि 'सतीत्व बड़ी चीज है पर उससे बड़ी चीज है स्त्रीत्व' तो लोग चौंक गए क्योंकि मातृत्व, पत्नीत्व आदि भूमिकाओं से अलग उसे देखने की आदत किसीको नहीं थी। इसके पश्चात अनुभूति के अलग-अलग स्तरों के बीच स्त्री-लेखन की धारा में नयी- नयी लहरें उठने लगीं। एक और नारी-जीवन के परंपरागत आदर्शों में तीव्र परिवर्तन हुआ तो दूसरी ओर बद्धमूल जटिल मानसिकता ने उसे विह्वल भी किया। एक ओर पश्चिमी चिंतन का प्रभाव तो दूसरी ओर भारतीय संस्कार की गहरी पैठी जड़ें – इनसे जुड़ती वह कभी टूटती है, आत्मनिर्वासन भोगती है, कभी अकेलापन भोगती है, तो कभी फिर उठ खड़ी होती है।

पहले के उपन्यासों की नारी केवल राजनीति या समाज - सेवा के लिए घर से बाहर पदार्पण करती दीखती थी, पर साठोत्तरी उपन्यासों की नायिकाएँ शिक्षा हेतु या फिर सुशिक्षित एवं चेतनासंपन्न होने पर अपनी क्षमता, बुद्धिमत्ता व सर्वांगीण विकास हेतु बाहर निकलती हुई नजर आती हैं। वे विविध व्यवसायों में स्वयं को स्थापित करती हुई दिखाई देती हैं। 'मेरी तेरी उसकी बात' (यशपाल) की उषा क्रांतिकारी एवं राजनीतिज्ञ के रूप में, 'सीमाएँ टूटती हैं' (श्रीलाल शुक्ल) की चाँद वैज्ञानिक शोधक्षेत्र में, 'आपका बंटी' (मन्नू भंडारी) की शकुन प्राचार्य के रूप में, 'मुझे चाँद चाहिए' (सुरेन्द्र वर्मा) की वर्षा वशिष्ठ अभिनय के क्षेत्र में, 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' (उषा प्रियंवदा) की सुषमा शिक्षा -क्षेत्र में जाकर स्वयं को उन परिवेशों में साबित करके अपनी दृढ़ता व गतिशीलता को रेखांकित करती हैं। 'पुनर्नवा' ( हजारीप्रसाद द्विवेदी ) की मृणाल, 'अलग-अलग वैतरणी' ( शिवप्रसाद सिंह ) की कनिया आदि जैसी नायिकाओं ने परम्परागत रूप में अपने त्याग और स्नेह से पारिवारिक विघटन को रोकने का प्रयास जरूर किया, परन्तु आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर, स्वाभिमान के प्रति जागरूक स्त्री जो कल तक अपनी इच्छाओं को दबाकर रखती थी, वह पुरुष की दासता से मुक्ति की कामना में, देहज उत्पीडन, यौन शोषण को रोकने, भौतिक आडम्बर हेतु, या वैयक्तिक स्वातंत्र्य हेतु, अपने उत्तरदायित्वों और अधिकारों के प्रति जागरूक हुई। आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने पर उसे सम्मान मिलना आरम्भ हुआ। 'अंतराल, (मोहन राकेश) की श्यामा, 'आपका बंटी' (मन्नू भंडारी) की शकुन, 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' (उषा प्रियंवदा) की सुषमा आदि ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं। शिक्षा और अर्थोपार्जन के लिए घर की दहलीज लाँघकर बाहर निकलनेवाली इस स्त्री को कहीं आलोचना, इर्ष्या भी सहनी पड़ी। आर्थिक क्षमता संजोकर अपने पृथक अस्तित्व के बोध से भरी मानसिकता वाली स्त्री अपने को पुरातन आदर्शों में जकड़ने से इनकार करने का साहस जुटाने लगी। वैचारिक धरातल पर खड़े होकर स्वयं को किसी से कमतर या कमजोर मानने, या पुरुष को महाबली और शक्तिशाली मानने के लिए वह अब तैयार न थी। अपने भविष्य की उज्ज्वल रूपरेखा का निर्धारण वह स्वयं करने को तत्पर हुई। मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग, ममता कालिया, चित्रा मुद्गल, मैत्रेयी पुष्पा, नासिरा शर्मा, शशिप्रभा शास्त्री, राजी सेठ, मंजुल भगत, अलका सरावगी, प्रभा

खेतान, गीतांजलि श्री आदि महिला लेखिकाओं ने भी स्त्री की पीड़ा व करुणा के साथ-साथ उसके साहस, संघर्ष व विद्रोही मानसिकता को मुखरित किया। आगे बढ़कर स्त्री ने अपने आपको जाति, वर्ग, आयु, धर्म के बंधनों से भी मुक्त किया। अंतर्जातीय विवाह को अपनाया। 'अलग अलग वैतरणी (शिव प्रसाद सिंह), 'गली आगे मुड़ती है', 'आपका बंटी', 'तेरी मेरी उसकी बात', 'जल टूटता हुआ' (रामदरश मिश्र) आदि उपन्यासों के स्त्री पात्र इन बन्धनों को तोड़कर अपने विवाह का फैसले लेते हुए दिखाई देते हैं।

अपने अधिकारों के प्रति सजग मानसिकता के कारण ही घर के बाहर मान - सम्मान भोगने के उपरान्त घर की बंधनकारक और अपमानजनक मर्यादाओं ने स्त्री को विद्रोह व प्रतिकार के लिए प्रेरित किया। खासकर तब जब उसकी आर्थिक क्षमताओं का लाभ तो परिवार ले, पर उसके परम्परागत उत्तरदायित्वों के मामले में न तो उसे सहयोग मिले न ही मुक्ति। तब वह या तो तनावग्रस्त होती है या आगे बढ़ते हुए कानून या समाज से मिली छूट का सहारा लेकर तलाक या पुनर्विवाह का कदम उठाती है। 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' की सुषमा, 'डाक बंगला' (मोहन राकेश) की इरा, 'अंतराल' (मोहन राकेश) की श्यामा आदि में एक तरफ मुक्ति के लिए छटपटाहट भी है, तो दूसरी तरफ स्वतंत्र होकर भी अकेलेपन या अन्य समस्याओं से घिरने के कारण संतुष्टि व सुख नहीं है। ये नायिकाएँ परिवार के लिए सर्वस्व समर्पित करती दीखती हैं पर घर-बाहर, दोनों मोर्चों को एक साथ समभालने की जद्दोजहद व इस संघर्ष से मुक्ति की मानसिकता भी उनमें दिखाई दी। 'आपका बंटी' की शकुन में, 'तेरी मेरी उसकी बात' की उषा में, एक इंच मुस्कान (राजेन्द्र यादव, मन्नू भंडारी) की रंजना में जो परिवार को त्यागकर आगे बढ़ीं। दाम्पत्य-जीवन में दबी – जकड़ी स्त्री की मुक्ति व प्रगतिकामी मानसिकता के दर्शन 'जल टूटता हुआ' की बदमिया, 'डाक बंगला' की इरा आदि में भी होते हैं। 'अलग अलग वैतरणी' की कनिया, 'मेरी तेरी उसकी बात' की उषा पति की अधिकार भावना व अविश्वास से उपजे कलह के कारण विद्रोही मानसिकता अपना लेती है।

भारतीय परम्परानुसार विवाह ही श्रेष्ठ है, पर इस सम्बन्ध में स्त्री को आज्ञाकारिणी, त्यागिनी, तन-मन-धन सर्वस्व समर्पिनी की भूमिका में ही देखा जाता रहा, चाहे वह कठपुतली या खिलौना बनकर घुटे, पर उसे 'आँसू' से भीगे अंचल पर अपना सब कुछ रखना होगा – पुरुष की यही सोच अनेक उपन्यासों में दीखती है। 'चाक' की सारंग के बारे में रंजीत की सोच यही है। 'चाक' की सारंग व श्यामा परिस्थितियों से संघर्ष कर जीवटता की मिसाल कायम करती हैं। कुसुम अंसल ने भी 'एक और पंचवटी' में नारी – जीवन की विडम्बना की गहरी छानबीन की है। भोग विलास व सुख-सुविधाओं की अपेक्षा जीवन के अर्थ की तलाश में उनकी नायिका सुरक्षा – कवच ध्वस्त कर खतरनाक मार्ग पर चल पड़ती है। इतना ही नहीं अपितु वह एक नया संसार खोजकर अपने खालीपन को भरने का प्रयास भी करती है। इन उपन्यासों में कई सवाल उठाये गए हैं। जैसे – क्या विवाह का अर्थ स्त्री के लिए मात्र गुलामी है? पति – घर स्वर्ण- पिंजर बन जाए तो स्त्री क्या करे? क्या स्त्री का अपना जीवन नहीं हो सकता? विवाह होने के बाद उसकी स्वतंत्रता क्यों समाप्त हो जाती है? वैवाहिक जीवन में प्रेम के अभाव में बननेवाले विवाहेतर सम्बन्ध पाप हैं क्या? क्या स्त्री को अपनी पसंद का साथी चुनने का अधिकार नहीं है? आदि।

'मुझे चाँद चाहिए (सुरेन्द्र वर्मा) की सिलबिल यानि वर्षा वशिष्ठ, मनोहर श्याम जोशी की बहुचर्चित नायिकाओं से भी आगे जाकर बीसवीं शताब्दी के समापन के साथ पुरुष की मौन सहचरी, लाज के आवरण में लिपटी बेबस समर्पित नायिका की छवि को चकनाचूर कर देती है। धीरे -धीरे उपन्यासों में ऐसी मानसिकता उभरी जिसमें विवाह को एकमात्र स्त्री - धर्म मानने के विषय में अस्वीकृति दिखाई देने लगी। बौद्धिकता, संतुलन व सफलता उसके लिए अनिवार्य हो गए। कैरियर पहले, विवाह बाद में, शायद नहीं भी।

स्त्रीवादी मानसिकता ने स्वाधीनता की शुरुआत देह से भी मानी। 'चाक' की रेशमा देह से ही स्वाधीनता की पहल करते हुए विधवा होने के बावजूद अवैध संतति को जन्म देने की आकांक्षा पालती है। वैधव्य को अभिशाप न मानकर दुर्घटना मानने की मानसिकता उभरी। इसी रूप में समाज के पक्षपात का विरोध कर मानवीय संवेदना जगाई 'अलग अलग वैतरणी' (शिवप्रसाद सिंह) की मिसराइन ने, 'तेरी मेरी उसकी बात' की उषा आदि ने। राजी सेठ के 'तत्सम' की विधवा वसुधा भी इच्छित साथी की तलाश करती है। 'ठीकरे की मंगनी' (नासिरा शर्मा) में मुस्लिम समाज की पेचीदगियों में जकड़ी उत्पीड़ित, दमित किन्तु स्वातंत्र्य - कामी नायिका का चित्रण है। प्रभा खेतान की 'पीली आँधी' में परंपरा में जकड़ी, आत्मसंघर्ष के लिए छटपटाती सोम गरिमा से जीने के लिए सभी सीमाएं तोड़कर मुक्ति की नयी परिभाषा गढ़ती है। विवाहेतर सम्बन्ध बनाकर गर्भधारण करने पर पति, परिवार, घर सब छूट जाता है, पर वह कोई समझौता नहीं करती। प्रभा खेतान ने अपने उपन्यासों में नारी को अपने अस्तित्व और अस्मिता के लिए नयी ज़मीन तलाशते हुए बताया है। "अपने अपने चेहरे" उपन्यास की रमा, 'पीली आँधी' की सोम, 'छिन्नमस्ता' की प्रिया, 'आओ पेपे घर चलें' की प्रभा और 'अग्निसम्भवा' की आइवी समाज से टकराकर अपने आपको भावनात्मक स्तर पर लहलुहान करते हुए अपने अस्तित्व को नए सिरे से परिभाषित करती हैं।"<sup>3</sup>

इस तरह नैतिकता - अनैतिकता के पुराने मापदंडों पर प्रश्नचिह्न लगने लगे। अपनी इच्छा से अनेक सम्बन्ध बनाने में उदार पुरुष अपनी पत्नी, प्रेयसी के सम्बन्ध में उतना ही अनुदार रहता है। स्त्री के सुख की उसे बिलकुल परवाह नहीं होती, फिर उसके घरवालों को उसकी भला चिंता ही क्यों हो। 'मित्रो मरजानी' (कृष्णा सोबती) में लेखिका ने पारंपरिक स्त्रियोचित मर्यादाओं का पालन दिखाया तो है पर साथ ही स्त्री की शरीर - सुख सम्बन्धी लालसा को वाणी भी दी है। यौन शोषण स्त्री को घर - बाहर कई स्तरों पर झेलना पड़ता है। लेखिका ने 'सूरजमुखी अंधेरे के' में बताया है कि बलात्कार की शिकार स्त्री की चीख को माँ-बाप, दोस्त आदि कैसे दबा देते हैं। कौमार्य, शील शुचिता के मसले स्त्री पर हमला करते रहते हैं। अनकिये अपराध की सजा की भोक्ता ऐसी स्त्रियाँ - कहीं किसी को पता न चल जाय, किसी से नहीं कहना है- आदि थोपी गयी चिंताओं से त्रस्त-ग्रस्त रहती हैं। 'छिन्नमस्ता' (प्रभा खेतान) 'की नायिका प्रिया बचपन से भाई द्वारा यौन शोषण का शिकार हो उहापोहों से घिरी रहती है, पर साहस बटोरकर उसका मुकाबला करती है और अपनी खोयी हुई अस्मिता और आत्मविश्वास को पुनः प्राप्त करती है।

स्त्री की यौन शुचिता को लेकर अनेक प्रकार की मानसिकताएँ उपन्यासों में उभरीं। पारम्परिकता के घेरे को तोड़ती हुई, पति का त्याग करती, एकाधिक पुरुष का वरण करती, पुनर्विवाह करती हुई स्त्रियों के चित्र उपन्यासों में उभरने लगे। बाज़ार के लिए भी स्त्री एक उपभोग्य वस्तु ही रही। चित्रा मुद्गल ने 'एक ज़मीन अपनी' में विज्ञापन की दुनिया में हलाल होती, तार - तार होती स्त्री को चित्रित किया। 'आवां' की नमिता पांडे भी घर से बाहर अस्तित्व की तलाश में जुटते ही यौन शोषण का शिकार होती है। कभी प्रेम के भ्रम में तो कभी नौकरी की तलाश में इस तरह के शोषण का शिकार बनी स्त्रियों की त्रासदी है 'आवां'। यह यौन शोषण किसी एक जगह या क्षेत्र तक सीमित नहीं है। कुटीर उद्योग, समाज सेवा, राजनीति, मॉडलिंग, शिक्षा कहीं भी हो सकता है स्त्री के साथ। पर स्त्री अपनी अस्मिता, बुद्धिमत्ता, प्रखरता से इन हादसों से उभरकर सबल बनने का प्रयास करती है। अपने जीवन में संघर्षरत किन्तु अपने अस्तित्व हेतु सजग स्त्री - पात्रों का चित्रण चित्रा मुद्गल ने लगभग अपने सभी उपन्यासों में किया है। "सामान्य गृहिणी की स्थिति से लेकर नौकरीपेशा स्त्रियों की भूमिका और चेतना तक, फ़िल्मी - विज्ञापन से लेकर, पत्रकारिता में अन्याय के प्रतिकार में खड़ी स्त्री - भंगिमा के साथ नारी के राजनैतिक, धार्मिक और आर्थिक प्रस्थान, उसके उत्थान और पतन से सम्बंधित विभिन्न पक्षों, समाज प्रदत्त उसके अधिकार-कर्तव्य, बदलती स्थितियों में नारी की

भूमिका और योगदान आदि पर बड़ी ही समग्रता और संतुलित दृष्टिकोण से विचार किया है।"<sup>4</sup>

उपन्यासों में वेश्या या कॉलगर्ल के चित्र भी उपस्थित हुए हैं। इनके प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण व मानसिकता विविध उपन्यासों में दिखाई देती है। स्वेच्छया कोई भी स्त्री यह काम नहीं करना चाहती। परम्परागत संस्कारों की वजह से वह इस व्यवसाय में जाना नहीं चाहती। आर्थिक विवशता या यौन-शोषण उसे इस व्यवसाय में झोंक देते हैं। कमलेश्वर के 'डाक बंगला' की शीला, 'तेरी मेरी उसकी बात' की हंसा ऐसी ही स्त्रियाँ हैं। हाँ, कुछेक अपवाद भी हैं। जैसे 'जल टूटता हुआ' की फुलवा, 'गली आगे मुडती है' की सुप्रिया, शैल जैसी अत्याधुनिकार्ये जो भौतिक जगत की चकाचौंध से आकर्षित होकर वासना - पूर्ति के लिए शौक के रूप में इस पेशे को अपनाती हैं। 'डाक बंगला' की इरा तो माता-पिता के प्यार के अभाव में, सुरक्षात्मक अभावग्रंथि के शमन के लिए रुग्ण मानसिकता की हद तक जा पहुँची, पुरुष देह की चाहना उसकी अनिवार्यता बन गयी।

प्रेम के बदले प्रेम की चाह हर इंसान में होती है। उसके अभाव में जीती नारी को वह जब जहाँ मिला यदि उसने स्वीकार कर लिया तो ऐसे में कभी - कभी सामाजिक कायदे - कानून टूटते नज़र आये। नारी पर घटित अन्याय, अत्याचार व वेदना के साथ - साथ नर - नारी संबंधों की जटिलता का रेशा रेशा मृदुला गर्ग ने 'कठगुलाब' में उधेड़ा है। स्त्रियों की इच्छा आकांक्षा का भी उन्होंने बखूबी चित्रण करते हुए रेखांकित किया है कि वे अपने सहचर पुरुषों से संवेदनात्मक जुड़ाव व तरल स्पर्श चाहती हैं। इसके सम्बन्ध में यह कथन दृष्टव्य है- "ये स्त्रियाँ भी हरियाकर सदाबहार हो जातीं यदि इन्हें भी इनके सहचर पुरुषों की संवेदना का तरल स्पर्श मिलता; यदि विश्वास, सद्भाव, आत्मीयता की तरल बौछार ने इनकी हृदयगत कोमलता को निरंतर सींचा होता। वे गुलाब नहीं जो उग आने पर अपने आप खिल भी जाते हैं, कठगुलाब हैं जिन्हें थोड़ी सी देखभाल से खिलाना पड़ता है।"<sup>5</sup> मृदुलाजी ने अपनी रचनाओं में स्त्री में अतिरिक्त सजगता, साहस, धीरज, आस्था, जिजीविषा, दृढ़ता की आवश्यकता को ज़रूरी बताया है क्योंकि उन्हें अपने सम्मान की सुरक्षा के साथ भावी पीढ़ी को संस्कारित कर समाज की सुरक्षा भी करनी है। मृदुलाजी ये मानती हैं कि प्रेम नैसर्गिक भावना है परन्तु यदि वो स्त्री-स्वातंत्र्य में बाधक हो तो काम्य नहीं। इस मानसिकता का चित्रण उन्होंने 'उसके हिस्से की धूप' में किया है। वहीं आत्मतृप्ति व भोगलिप्सा, प्रेम व सेक्स को लेकर उपजते मानसिक द्वंद्वों का चित्रण 'चितकोबरा' में हुआ है।

प्रेम या तो होता है, या टूटता है या ऊब और स्खलन पैदा करता है। अधिकांशतः एक हमेशा इसमें दाता की मुद्रा में होता है और दूसरा याचक की। एक वक्ता होता है तो दूसरा श्रोता। जहाँ पर परस्पर संवाद न हो, समान वैचारिक धरातल न हो, भावनाओं का परस्पर आदान - प्रदान न हो, जहाँ एक दूसरे के खालीपन या कमियों को भरकर परस्पर सहारा न दिया जाता हो, वहाँ प्रेम कब हवा हो जाता है पता ही नहीं चल पाता। फिर जो बच जाता है वह है समझौता या सामाजिक दृष्टि से किया गया संबंधों का निर्वाह। नासिरा शर्मा ने 'संगसार' में यही बात आसिया के माध्यम से कही है। उसकी जिंदगी हर तरफ से अच्छी है, पर जीवन में प्रेम का अभाव है। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'चाक' की नायिका सारंग भी उन औरतों का प्रतिनिधित्व करती है जो पतियों को पसंद तो करती हैं पर सपनों के पूर्ण पुरुष का दर्जा उन्हें नहीं दे पातीं। कर्तव्य - भाव से सम्बन्ध निभाना एक बात है और प्रेम करना दूसरी बात। प्रेम तो वहीं पनप सकता है जहाँ दोनों के हृदय - बुद्धि में सामंजस्य हो और एकरसता भी हो।

एक बात और है जो इन उपन्यासों में उभरकर आई। वो यह कि आज एक स्त्री दूसरी स्त्री का सहारा भी बन रही है, यह जितना सत्य है, उससे बड़ा सत्य यह भी है कि अपनी अस्मिता की तलाश में जुटी इन स्त्रियों के अपने रिश्ते की औरतें कहीं सास, कहीं बुआ, तो कहीं ननद आदि के रूप में उन्हें सहानुभूति

देती, संकट से बचाती हैं। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में ऐसे कई स्त्री पात्रों का वर्णन है। ये स्त्रियाँ उन स्त्रियों से थोड़ा अलग हैं जो पहले इन्हीं रिश्तों से स्त्री के आगे बड़े कदम को रोकने, उसके साहस को ध्वस्त करने में जुट जाती थी। नारी की अपने व्यक्तित्व व अस्मिता की तलाश की यह राह जटिल भी थी और कहीं - कहीं भयावह भी। लगातार संघर्ष ने उन्हें बाहर से चाहे जितना कठोर बनाया हो, उनकी भीतर की कोमलता अधिकांशतः बनी रही। ये नारियाँ स्वयंचेता हैं, विद्रोहिणी भी हैं। पर यह ध्यान में रखना है कि यह विद्रोह जो पुरुष के प्रति नज़र आता है सबको, वह वास्तव में पुरुष का नहीं, अपितु पुरुष की पुरातनपंथी, दकियानूसी, शोषक मानसिकता का है।

इस प्रकार स्त्री सशक्तिकरण के लिए स्त्री शिक्षा का समर्थन, स्त्री के प्रति दमन एवं हिंसात्मक मानसिकता का विरोध, स्त्री की आर्थिक आत्मनिर्भरता, अन्याय का विरोध, उसकी अस्मिता, उसके कर्तव्यों के साथ - साथ उसके अधिकारों के प्रति जवाबदेही आदि वे महत्वपूर्ण मुद्दे हैं जिनके प्रति चेतना आधुनिक हिंदी उपन्यासों में उभरी। उपन्यासकारों ने नारी जीवन के संकटों, अंतर्विरोधों, उलझनों से उसे भय मुक्त कर लड़ने, शक्तिहीन बनानेवाले तत्वों का प्रतिकार करने में सक्षम दिखाने का प्रयास किया। उनमें स्वानुभूति व चेतना जगाने का संवेदनात्मक प्रयत्न किया। रचनाकारों ने एक तरफ तो उनकी जटिल परिस्थितियों से उपजी मनोदशाओं का चित्रण किया है तो दूसरी ओर उनके जीवन की क्रूर सच्चाइयों का उदघाटन किया है। 'पारो' या 'सुनीता' 'कभी किसी समय जरूर अपनी बात नहीं कह पाई थीं, पर हाशिये पर धकेली उन जैसी असंख्य औरतों की पीड़ा को वाणी मिली। वह बंधनों के मकड़जाल से मुक्त होकर घर से बाहर निकली। उसने एक लम्बी लड़ाई लड़ी। सफलता एकदम से नहीं मिली उसे। कभी वह हारी, फिर वह अपने अस्तित्व को पाने - सहेजने- समेटने की पुनः कोशिश में जुटी रही। वह कहीं - कहीं परंपरा को पीछे छोड़ने की कोशिश करती हुई नज़र आई तो कहीं नवीन सन्दर्भों से जुड़ न पाने की मानसिकता के कारण क्रुद्ध होती हुई। कभी वह छटपटाती भी है तो कभी आतंक, तनाव और हीनता - ग्रंथि में जकड़ती भी जाती है। कभी वह सार्थकता - बोध की तलाश करने तक असुरक्षा की भावना से ग्रस्त भी होती दिखायी देती है, तो कभी आदर्शों और मूल्यों के अभेद्य दुर्ग से मुक्ति की कामना में उन दरारों को खोजती दिखाई देती है, जिनका सहारा लेकर वह उस बीहड़ से निकल सके। वह देवी के आवरण, नकली खोखले कवच से निकलकर एक आम मानवी के रूप में जीने की अदम्य जिजीविषा से भरी है। "वह गीली लकड़ी की तरह धुआँ देती रहने में अपनी सार्थकता नहीं मानती, वह सड़ना नहीं चाहती, निरंतर बहना चाहती है, अनदेखी अनजान दिशाओं में बहना चाहती है, दूर दूर तक निरुद्देश्य - सी, लक्ष्यहीन सी, उन्मुक्त।"<sup>6</sup>

इस तरह तेज़ रफ़्तार से भागते हुए उसे सतर्कता की आवश्यकता है। यह भी कि उसकी मुक्ति का आधार द्वेषपरक न हो, वस्तुपरक हो। अपने भीतर की अंतर्विरोधी मानसिकता पर भी उसे विजय पानी होगी। मुक्ति के नशे में अपनी ही सफलता के लिए, सुरक्षा के लिए आवश्यक प्रतिबद्धताओं को भूलने से भी उसे बचना होगा।

#### सन्दर्भ

1. प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी, डॉ गजानन शर्मा, पृ. सं. 68।
2. वही, पृ. सं 78 -79।
3. स्त्रीवाद और महिला उपन्यासकार, डॉ वैशाली पांडे, पृ. सं. 186।
4. चित्रा मुद्गल के कथा - साहित्य में युग -चिंतन, अर्चना मिश्रा, पृ. सं. 50।
5. इतिवृत्त की संरचना एवं संरूप, डॉ. रोहिणी अग्रवाल, पृ. सं. 66।
6. एक इंच मुस्कान, राजेन्द्र यादव, मन्नु भंडारी।